उपसंहार

विद्यापति एवं जयदेव के गीतिकाव्य का समग्र

मूल्यांकन

उपसंहार

विद्यापति एवं जयदेव के गीतिकाव्य का समग्र मूल्यांकन

साहित्येतिहास में किसी भी कवि का स्थान-निर्धारण करने के लिए मुख्य रूप से तीन प्रश्नों पर ध्यान देना होता है- प्रथम उस कवि ने पूर्ववर्ती कवियों के प्रभाव को किस प्रकार ग्रहण किया और कितनी अपनी मौलिकता का योग किया। दूसरा उसके परवर्ती कवि उससे किस सीमा तक प्रभावित हुए एवं तीसरा है जनसामान्य में उस कवि का कितना समादर हुआ?

विद्यापति से पूर्व हिन्दी-साहित्य की अपनी कोई विशेष परम्परा नहीं थी, फलतः ये संस्कृत-परम्परा के कवियों से ही प्रभावित हुए जिनमें महाकवि माघ, अमरुक, गोवर्धनाचार्य, कालिदास और जयदेव का नाम विशेषरूपेण उल्लेखनीय है। इन कवियों से प्रभाव-ग्रहण करके भी विद्यापति ने अपनी काव्य प्रतिभा के बल पर उसे और भी अधिक हृदयग्राही बना दिया है। यही कवि की महानता है।

परवर्ती कवियों से प्रभाव-ग्रहण की अपेक्षा परवर्ती कवियों को प्रभावित करना किसी कवि की महानता की परख करने के लिए अधिक खरी कसौटी है। विद्यापति हिन्दी-साहित्य के आदि कवि हैं। उस समय से लेकर आज तक न जाने कितने कवि नक्षत्र साहित्याकाश में चमके और विलीन हुए पर विद्यापति का प्रकाश बहुत कम कवियों पर अक्षुण्ण बना रह सका है। काव्यरूप की दृष्टि से विद्यापति के काव्य को दो वर्गों में रक्खा जा सकता है- मुक्तक काव्य और गीतिकाव्य। मुक्तक शैली का प्रभाव रीतिकालीन कवियों पर विशेष रूप से परिलक्षित होता है, जिनमें बिहारी, देव, मतिराम आदि प्रमुख हैं, हिन्दी साहित्य में इन कवियों का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है, किन्तु विद्यापति से प्रभाव ग्रहण करके भी ये कवि उस प्रभाव को विद्यापति की अपेक्षा अधिक सशक्त, सजीव और मर्मस्पर्शी न बना पाये।

विद्यापति के काव्य का दूसरा रूप और है गीतिकाव्य। इनके पदों में गीत की सभी विशेषताएँ अपने सहज और स्वाभाविक रूप में प्रस्फुटित हुई हैं। उन्हें लाने के लिए कवि के मस्तिष्क को किसी प्रकार का आयास नहीं करना पड़ा है। काव्य के क्षेत्र में जब हृदय पर चढ़कर मस्तिष्क बोलने लगता है तो काव्यत्व को आघात पहुँचता है। विद्यापति का काव्य इस आघात से सर्वथा शून्य उस कोमल कलकल-छलछल करके बहने वाली निर्झरिणी के समान है जिसका प्रवाह सहज और गतिमय है। यदि यह कहा जाय कि हिन्दी-साहित्य की गीति-परम्परा के जनक महाकवि विद्यापति ही हैं तो अनुपयुक्त न होगा। इनकी गीतिपरम्परा में कबीर, तुलसी, सूर, मीरा, मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, महादेवी आदि अनेक भक्तिकालीन और आधुनिककालीन कवि आते हैं। यह विद्यापति के परवर्ती प्रभाव का प्रसार है। विद्यापति की गीति-परम्परा में आकर भी ये कवि विद्यापति जैसी गीति-धारा को प्रवाहित करने में अपेक्षाकृत पीछे ही रह गये हैं। विद्यापति की गीतों में जो संगीतात्मकता, लयात्मकता, रागात्मक अनुभूति और समाहित प्रभाव आदि गीति-तत्वों का पुंज है, वह इन कवियों में प्राप्त नहीं होता।

तीसरी कसौटी है जनता पर प्रभाव की। सच पूछो तो किसी कवि का सही मूल्यांकन करने के लिए यही कसौटी सबसे खरी है। जनता के माध्यम से ही कवि अमर बनता है। जो कवि जनता का कंठहार न बन सके, वह चाहे कितना ही महान् क्यों न हो, उसका पाण्डित्य चाहे कितना ही प्रखर क्यों न हो, शिक्षित समाज की परिधि में ही बँधकर रह जाता है और धीरे-धीरे इस परिधि की सीमाएँ भी सिकुड़ती जाती है। इस कसौटी पर विद्यापति खरे ही उतरते हैं। जनता में इनका कितना समादर हुआ है, वह गोस्वामी तुलसीदास को छोड़कर हिन्दी में और किसी को नहीं प्राप्त हुआ। कबीर के पदों को गुनगुनाते तो कुछ कबीर-पंथी ही मिलेंगे, लेकिन विद्यापति के पदों को भोगी और योगी सभी ने सम्मानपूर्वक ग्रहण किया है। जयदेव का गीतगोविन्द चाहे अपनी इस शर्त को पूरा न करता हो-

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासकलासु कुतूहलम्।
मधुकोमलकान्तपदावली शृणु तदा जयदेव सरस्वतीम्।।

पर विद्यापति की 'पदावली' जितना 'नाअर' का मन मोहने में समर्थ है, उतना ही भक्तों को अलौकिक आनन्द का आस्वादन भी करा सकती है। एक ओर रसिकजन विद्यापति के पदों में डूब जाते हैं तो दूसरी ओर महाप्रभु चैतन्य जैसे भक्तप्रवर भी उन्हें सुनकर भावविभोर होकर मूर्च्छित हो जाते हैं। जीवन के दो नितान्त विभिन्न छोरों को छूकर चलने वाली कविता विश्व-साहित्य के कितने महाकवियों द्वारा प्रणीत हुई है? सम्भवतः ऐसे कवि खोजने पर भी न मिल सकें, पर विद्यापति की यह काव्य-क्षमता समझिए अथवा बहुमुखी प्रतिभा का चमत्कार; इनका काव्य काव्यशास्त्रियों को जितना भावों में लीन कर सकता है, साधारण जनता को अपनी अप्रतिम सरलता के कारण उतना ही ग्राह्य जान पड़ता है। सरलता में रीति और रीति में सरलता गूँथ देना बच्चों का खेल नहीं। इसके लिए प्रकाण्ड पाण्डित्य और अथाह भावधारा अपेक्षित है। हृदय और मस्तिष्क का ऐसा सुन्दर तथा समुचित समन्वय जन्मजात कवियों से ही संभाव्य है। कहने की आवश्यकता नहीं कि विद्यापति की पदावली में यह अभूतपूर्व सामंजस्य प्राप्य है।

इनके इसी सामंजस्य ने भिन्न-भिन्न भाषा-भाषियों को इन्हें अपनाने के लिए विवश कर दिया। मैथिल वाले इन्हें अपना ही मान बैठें, बंगवासियों ने इन पर अपना एकाधिपत्य घोषित किया तो हिन्दी वाले भी इस खींच-खचेड़ में पीछे न रहे। यद्यपि मस्तिष्क के तर्कों ने आज इस खींच-खचेड़ को कुछ ढीला अवश्य कर दिया है, तथापि हृदय की भावुकता अभी तक विद्यापति को उसी शक्ति और दुराग्रह के साथ पकड़े हुए हैं। जनता के द्वारा समादृत काव्य का इससे प्रबल प्रमाण और क्या हो सकता है?

कहने का अभिप्राय यह है कि एक कवि की महानता की जितनी भी कसौटियाँ हो सकती हैं, उन सब पर विद्यापति खरे उतरते हैं। विद्यापति की 'पदावली' सरस गीतिपरक रचना है। इसमें संयोग और वियोग की मार्मिक अभिव्यंजना हुई है। 'पदावली' संगीत के स्वरों में गूँजती हई राधाकृष्ण को समर्पित की गई है। विद्यापति ने शृंगार रस पर ऐसी लेखनी उठाई है, जिससे राधा-कृष्ण के जीवन का तत्व प्रेम के अतिरिक्त कुछ भी नहीं रह गया है। जिस प्रौढ़ शृंगार

भावना के दर्शन में हमें विद्यापति में होते हैं, उसका पूर्ण विस्तार हमें रीतिकाल में दिखाई पड़ता है। विद्यापति ने राधाकृष्ण के बीच निर्बंध प्रेम चित्रित किया।

सांस्कृतिक परम्परा की दृष्टि से विद्यापति जिस सीमा तक हिन्दी के साथ जुड़े हैं, उस सीमा तक बंगला या मैथिली से नहीं। विद्यापति शैव थे, किन्तु उन्होंने अपनी पदावली में राधा-कृष्ण की रति के चित्र प्रस्तुत किये हैं। कवि विद्यापति के भक्त हृदय का रूप उनकी वासनामयी कल्पना के आवरण में छिप गया है। 'पदावली' के अन्तर्गत भक्ति या अध्यात्म की खोज करने का विरोध आचार्य शुक्ल ने किया है। वस्तुतः ऐहिक शृंगार भावना की तन्मयता की गहरी अनुभूति ही उन्हें आध्यात्मिक स्तर पर रूपान्तरित करती हुई प्रतीत होती है। वयः सन्धि, नखशिख, अभिसार, मान, विरह आदि कवि की वासनामयी प्रवृत्ति के अनुसार अभिव्यक्त हो रहे है प्रतीत होते हैं। भाव, आलम्बन विभाव, उद्दीपन विभाग, अनुभाव और संचारी भावों का दिग्दर्शन पदावली में सुन्दर रीति से प्राप्त होता है। पदावली में स्थायी भाव तो आद्योपान्त विद्यमान है। उसके बीच में ईश्वरीय भावना का पूर्ण तिरोभाव है, एक ओर नवयुवक चंचल कृष्ण नायक हैं तो दूसरी ओर उद्दामयौवना राधा नायिका।

कवि रूप-सौन्दर्य या अंग-सौन्दर्य की अपरूपता उद्घाटित करते हुएमात्र संवेदनशील दृष्टा की भूमिका का निर्वाह करता है। वह अपने को सामाजिक मर्यादाओं में नहीं जकड़ता। कवि ने अन्तर्जगत का उतना हृदयग्राही चित्रण नहीं किया है, जितना वाह्यजगत का, उसने तो सद्यःस्नाता अथवावयः सन्धि के चंचल भावों की लड़ियाँ गूँथी हैं। विद्यापति के संसार में यौवन के आनन्द ही आनन्द हैं। डॉ० रामकुमार वर्मा ने लिखा है- "विद्यापति के इस वाह्य संसार से भगवत-भजन कहाँ, इस वयः सन्धि में ईश्वर से सन्धि कहाँ, सद्यः स्नाता में ईश्वर से नाता कहाँ और अभिसार में भक्ति का सार कहाँ?"

कविवर विद्यापति उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि के चमत्कार से पाठकों को आश्चर्यान्वित नहीं करते, अपितु वह आलम्बन की आधी या थोड़ी छवि दिखाकर नयन तृषा बढ़ाकर छोड़ देते हैं। कवि के रूप-वर्णन का क्षेत्र कटि से

कुच तक है, जहाँकुच प्रदेश में अधिक ठहराव है। कवि की नायिका के स्वकीया होने के कारण शृंगार-चित्रण अस्वस्थ नहीं हो पाया है। विद्यापति की कविता में स्त्रीत्व और पुरुषत्व की भावना की अन्यत्र दुर्लभ प्रबल धारा बही है।

'विद्यापति-पदावली' की रचना देशी भाषा मैथिली में है। उससे यह ज्ञात हो जाता है कि १४वीं शताब्दी की समाप्ति होते-होते देशी भाषाएँ काव्य-भाषा के पद पर आसीन हो गयी थी।

प्राचीन भारत के गुप्तकालीन साहित्यिक वातावरण ने संस्कृत के विकास का एक नवीन मार्ग प्रशस्त किया था। प्राचीन और मध्यकाल के संधि युग में कवि जयदेव ने इसे पूर्ववत् भव्यता और गौरव के साथ प्राणवान् बने रहने में सहायता प्रदान की। गीतिकाव्य में वैदिक परम्परा में कालिदास, अमरुक और भर्तृहरि की श्रेणी में यह एक नया नक्षत्र जुड़ गया।

जयदेव ने गीतिकाव्य की समस्त विशेषताओं के साथ अपने काव्य गीतगोविन्द का प्रणयन किया। गीतगोविन्द के नायक पूर्णावतार श्रीकृष्ण और नायिका सर्वांग-सुन्दरी राधा हैं। दोनों के मिलन, बिछोह एवं पुनर्मिलन का सूक्ष्म भाव-चित्रण करने में भावावेगमयी अवस्था का सरल चित्रण करते हुए संक्षिप्तता, रागात्मकता, संगीतमयता तथा सरस कोमलकान्त पदावली का जैसा सुन्दर प्रयोग किया है वह संस्कृत के श्रेष्ठ कवियों और श्रेष्ठ काव्यों की कोटि का बन पड़ा है। जयदेव के काव्य ने पिदले ६०० वर्षों में निरन्तर अनेक कवियों, टीकाकारों और अनुवादकों को अपनी ओर आकर्षित किया है। भारत में उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक गीतगोविन्द के अनुवाद हुए एवं इस पर अनेक टीकाएँ लिखी गयी है। न केवल भारत, अपितु विश्व के साहित्य रसिकों तथा मर्मज्ञों ने इसे अपनाया है। जर्मन, फ्रेंच, अँगरेजी, लैटिन और रूसी भाषाओं में इसके अनुवाद हुए हैं। जन-सामान्य से लेकर विद्वानों और सम्राटों तक गीतगोविन्द की लोकप्रियता का क्षेत्र फैला हुआ है। यह अनुवाद टीकाएँ व जन-जन की लोकप्रियता की प्राप्ति गीतगोविन्द की साहित्यिक महत्ता का सबल और अकाट्य प्रमाण है।

वैष्णव धर्म में श्री राधा का प्रथम प्रवेश कराने वाले इस अप्रतिम काव्य के प्रणेता उमापतिधर, शरण, आचार्य गोवर्धन और कवि धोयी के समकालीन कवि जयदेव साहित्य प्रेमी बंगाल के सेन वंशीय शासक बल्लालसेन के पुत्र लक्ष्मणसेन के दरबार के दीप्त रत्न थे। संस्कृत साहित्य में पर्याप्त रुचि रखने वाले 'परम वैष्णव' राजा लक्ष्मणसेन के राज्यकाल में ही जयदेव ने राधा-कृष्ण की सरस क्रीड़ाओं से युक्त भक्ति भाव पूर्ण एवं शृंगार-रस-सिक्त काव्य गीतगोविन्द का प्रणयन कियाथा। सारस्वत वंश में उतपन्न कौसलगोत्रीय ब्राह्मण गोस्वामी भोजदेव एवं उनकी साध्वी पत्नी रामादेवी (राधा देवी) के पुत्र कवि जयदेव पश्चिम बंगाल की अजय नदी के तट पर स्थित किन्दुबिल्व (केन्दु तिन्दु) ग्राम में १२वीं शताब्दी के प्रारम्भ में इस धराधाम पर अवतरित हुए थे। बाल्यावस्था में ही मातृ-पितृ विहीन, प्रारम्भ से ही राधा-कृष्ण विषयक कथाओं में रुचि रखने वाले यायावर जयदेव का विवाह देवशर्मा ब्राह्मण की, भगवान श्री जगन्नाथ जी की असीम अनुकम्पा से उत्पन्न, नृत्य-गान-कुशला कन्या पद्मावती से हुआ था। कहा जाता है कि इनका दूसरा विवाह पंजाब के सारस्वत गोस्वामी पूर्णचन्द्र की कन्या रोहिणी देवी से हुआ था। वैष्णव सम्प्रदायवादी भक्त कवि जयदेव पुण्यधाम वृन्दावन में गोलोकवासी हुए।

बंगाल में श्रीराधाकृष्ण लीला के रसिक गायकों में आद्याचार्य श्री जयदेव महाप्रभु प्रसन्नराघवकार, चन्द्रालोककार एवं पक्षधरी जयदेव से नितान्त भिन्न है। रसिकाचार्य जयदेव की एकमात्र अमर रचना गीतगोविन्द है, जिसने वैष्णव सम्प्रदायों को माधुर्यमयी उपासना की प्रेरणा प्रदान की।

आदि महाकाव्य रामायण के रचयिता महर्षि बाल्कीकि जैसे आदि कवि के रूप में प्रख्यात हैं, ठीक वैसे ही श्री राधाकृष्ण के शृंगार रस वर्णन में कविवर जयदेव आदि कवि हैं। गीतगोविन्द के प्रतिपद में परमात्मा श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम-लक्षणा भक्ति-माधुरी का वर्णन है। श्री वृन्दावन में धीर-समीर-यमुना के तीन पर मंजुल-नवल निकुंज में केवल मात्र दो दिन (वसन्त ऋतु में सम्भवतः कृष्णपक्ष की अष्टमी नवमी) में सम्पन्न हुए श्री राधा-कृष्ण के मदन महोत्सव की कथा का २४ प्रबन्धों में विभाजित, १२ सर्गों में किया गया विस्तार कवि जयदेव के अभूतपूर्व अभिव्यंजना-कौशल का परिचायक है। स्वल्प कथासूत्र को लेकर पूर्णविस्तार के साथ

सरस व संगीतमय शैली में गीतिकाव्य के समस्त अंगों से युक्त सफल, काव्य का प्रणयन करने वाला कवि संस्कृत साहित्य में अद्वितीय है। काव्य में नायक-नायिका शृंगार रस के अधिष्ठाता स्वरूप भगवान श्रीकृष्ण एवं श्रीरास-रासेश्वरी राधा जी हैं। बहुवल्लभ होने पर भी एकमात्र राधा में ही अनुरक्त दक्षिण नायक श्रीकृष्ण को गोपांगनाओं से घिरा देखकर भी उनके प्रेममद से मत्त मुग्धा स्वकीया श्रीराधा ईर्ष्या नहीं करती, किन्तु अपने प्रिय के स्पृहणीय सौभाग्य को देखकर अधिक उत्कण्ठित हो जाती है। राधा की ऐसी दिव्य प्रीति देखकर अपूर्व कामोन्मतता के आधीन अनुकूल कृष्ण रासक्रीड़ा में अपने बन गये अपराध के लिए व्याकुल हो जाते हैं, किन्तु मानिनी राधा समय-भंग के कारण कुपित होकर प्रियतम श्यामसुन्दर की तर्जना करती है, तब धैर्यवान कृष्ण न तो पामर कामी के समान दीनता प्रदर्शित करते हैं और न अरसिक निष्ठुर के समान अपेक्षा करते हैं, वरन् कोपयुक्ता प्रिया को सखी द्वारा सामादि उपायों से प्रणयोन्मुख बनाकर प्रेम प्रासाद रूपी मंजु कुंज में प्रवेश करा देते हैं और असूया का आवरण हट जाने पर उज्ज्वल प्रेम भक्ति के अनुरूप राधा का मनोरथ पूर्ण करते हैं। ऐसा तरूण-जन-प्रिय, भक्ति शृंगार-रस-समन्वित दिव्य आध्यात्मिक प्रेम-प्रक्रिया का वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है। कवि सम्राट जयदेव ने साहित्यशास्त्र में वर्णित नायिका के विविध भेदों एवं नायिका भेद की सातों अवस्था (प्रोषितपतिका को छोड़कर) के अनुसार अपनी नायिका का वर्णन कर गीतगोविन्द को नायिका भेद की उदाहरण-चन्द्रिका बना दिया है।

रसनिमग्न कवि जयदेव रसानुभूति में अलौकिक व अद्भुत हैं। किसी भी कवि की कवित्व की परख रसनिष्पत्ति से होती है। (विविध भाव, विभाव, संचारी एवं व्यभिचारी के योग से स्थायी भाव को रस रूप में परिणम करने में ही कवि की प्रतिभा की परीक्षा होती है।) महाकवि जयदेव के उत्तम कवित्व की प्रतीति गीतगोविन्द के भक्ति समन्वित शृंगार रस से होती है। जयदेव का गीतगोविन्द संस्कृत साहित्य में भक्ति-शृंगार-रस का आदि काव्य है। शृंगार रस की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति के लिए कवि ने स्थायी भाव रति को पूर्ण स्थायित्व प्रदान करने वाले अलौकिक रूपलावण्य सम्पन्न पात्रों (राधा-कृष्ण) को आलम्बन रूप में चुना हैं। वसन्त ऋतु की अपूर्व छटा (उद्दीपन सामग्री) नायिका की रति को अंकुरित करती

है और मदनमहोत्सव का उन्मादक दृश्य, नायक की स्पृहणीय सौभाग्य समृद्धि का दर्शन तथा उसकी आत्यन्तिक प्रीति का सहज अनुभव रति को पल्लवित व पुष्पित करता है। रसिकवर नायक भी प्रेम-भावयुक्ता नायिका के लिए व्याकुल हो उठता है। इस प्रकार परस्पर समागम के लिए अधीर राधा-कृष्ण का मिलन कराने के लिए कवि सखी द्वारा संकेत निश्चित कराते हैं। ज्यों ही रति फलोन्मुख होती है, त्यों ही रसोत्कर्ष के लिए रस-मर्मज्ञ जयदेव नायक के दाक्षिण्य के प्रतिकूल समय भंग का प्रसंग उपस्थित करते हैं। असूया की काली बदली की छाया पड़ते ही रति का निर्मल गंगा प्रवाह कलुषित होकर मान विप्रलम्भ की यमुन-धारा के रूप में बहने लगता है। इस असूया-वेग को कवि सामादि उपायों से हटाकर तदुपरान्त राधा-कृष्ण का युगल-मिलन कराकर पाठकों को स्थायी रति के श्रेष्ठ अश सम्भोग शृंगार-रस-जलधि में निमग्न कर देती है। सहृदय कवि जयदेव ने कहीं भी भारवि अथवा माघ के समान सन्ध्या, चन्द्रोदय, जलविहार, वसंतोत्सव, वनविहार जैसे विषयों से पूरे सर्ग भरकर रस के सहज, प्रवाह को बाँधा नहीं है। वरन् प्रत्येक आवश्यक दृश्य का संक्षेप में वर्णन कर काव्य को रसमय बना दिया है।

जहाँ महाकवि कालिदास ने अपने प्रणय के सुकुमार भावों की अभिव्यंजना के लिए तीन नाटक व दो गीतिकाव्यों (मेघदूत व ऋतुसंहार) का प्रणयन किया, महाकवि भारवि, माघ, हर्ष आदि ने सौन्दर्य चित्रण के लिए अपने महाकाव्यों में कई-कई सर्ग भर दिये, ईश्वर के प्रति अनुराग प्रदर्शित करने के लिए भागवतपुराण जेसे वृहद् ग्रन्थ की रचना की गई, वहाँ गीतिकार जयदेव अपने एक छोटे से गीतिकाव्य में प्रेम, सौन्दर्य एवं भक्ति त्रिवेणी प्रवाहित करके जन-जन के लिए प्रयागराज का सृजन कर गये। भले ही काव्यत्व में कालिदास, भारवि श्रेष्ठ हैं, किन्तु रस-प्रवाह में उत्तररामचरितं को भी पीछे छोड़ने वाले जयदेव का भक्ति भाव उनमें नहीं मिलता। जयदेव के काव्य नायक कोई साधारण पुरुष नहीं, अपितु समस्त जीवधारियों के अन्तःकरणों में आत्मा रूप से विराजमान सबके साक्षी परमपिता परमेश्वर हैं। वह ही षडेश्वर्य परिपूर्ण ईश्वर जीवों पर अनुकम्पा करने के लिए मानव रूप में अवतरित होकर ऐसी सरस लीला कर रहे हैं, जिसमें जीव आसक्त हो जाये और श्रीकृष्ण रससागर में स्नान कर ले। सच्ची भावना के कारण

उस विषयी का काम भाव ही ईश्वर प्रेम बनकर उसको भवसागर से पार कर देगा। इस प्रकार सांसारिक विषय-सुखों में आपाद-मस्तक निमज्जित जीव को उसके मनोनुकूल मार्ग द्वारा ईश्वरोन्मुख करना ही गीतगोविन्द का प्रधान उद्देश्य है।

गीतगोविन्द के व्यापक भाव साहित्य, संगीत एवं कला तीनों की विशेषताओं को अपने में समेटे हुए हैं। रससिक्त गीतगोविन्द का भावपक्ष जितना सुकोमल एवं सुललित है, वहीं कलापक्ष (अभिव्यक्ति पक्ष) भी सुष्ठु पद विन्यास, अलंकारों के सुभग प्रयोग माधुर्यादि गुणों के समुचित सन्निवेश के कारण अनुपम व अद्वितीय है। अपभ्रंश भाषा की समस्त विशिष्टताओं को ग्रहण करके देववाणी संस्कृत में अन्त्यतुकयुक्त सुन्दर ध्रुवक वाली पदावालियों की रचना करना जयदेव की अपनी विशिष्ट विशिष्टता है। भावानुरूप अल्पसमासयुक्त एवं समासबहुल शैली में गीत लिखकर जयदेव ने एक मनोमुग्धकारी प्रवाह-प्रवाहित किया है। जहाँ 'भागवतपुराण', 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' आदि में कृष्ण की एक-एक लीला का वर्णन कई-कई पृष्ठों में पूर्ण होता है, वहाँ जयदेव ने कालिदास, भारवि के समान व्यंजनावृत्ति के द्वारा केवल एक-एक पंक्ति में सम्पूर्ण लीला का साक्षात् दृश्य उपस्थित कर दिया है। जयदेव की इन्हीं विशिष्टताओं के कारण उनके काव्य को संगीत नाटक भी कहा जाता है।

जयदेव द्वारा प्रयुक्त गौड़ी रीति केवल मात्र समास बहुला, उद्भट पद समन्वित साहित्यशास्त्र की गौड़ी न रहकर ओज, कान्ति एवं माधुर्यादि गुणों से समन्वित होकर शृंगारी कैशिकी वृत्ति के अनुकूल बन गई है। प्रतिपद में सजह प्रविष्ट अनुप्रास की ध्वनि वीणा-तन्त्री-निनाद के समान सुनने के बाद भी कर्णगहरों में ध्वनित होती रहती है। गीतगोविन्द में अलंकारों का अविरल प्रयोग होने पर भी 'किरातार्जुनीयम्', 'शिशुपालवध' और हरिविजय' के समान एकाक्षरी, अनेकार्थ, लोम, प्रतिलोम विरोधाभास और श्लेष का क्लेश नहीं है। गीतगोविन्द का पद्यबन्ध छन्द एवं प्रबन्धबद्ध है। गीतिकार जयदेव ने संस्कृत साहित्य में सर्वप्रथम संगीत शास्त्र के प्रमाण से राग एवं तालबद्ध प्रबन्धों की रचना की है। सर्वथा गेय संगीतसुमनों का सुग्रन्थन करने वाले इस काव्य ने ही जयदेव को गीतिकारों की

श्रेणी में शीर्ष स्थान का अधिकारी बनाया है। साहित्य एवं संगीत के साथ-साथ कला का क्षेत्र भी गीतगोविन्द से अछूता नहीं रहा है।

विशिष्ठ व्यक्तित्व वाले अनूठे गीतिरत्न गीतिगोविन्द द्वारा सत्यं शिवं सुन्दरं की स्थापना करने वाले जयदेव ने जन-जन के मानस को ऐसा अभिभूत किया है कि रसिक-अरसिक, निर्धन-धनवान, रंक-सम्राट, संस्कृतज्ञ-असंस्कृतज्ञ, शिक्षित-अशिक्षित सभी इसके गीतों की लय-ताल पर झूम उठते हैं। चैतन्य महाप्रभु इस गीतगोविन्द को परम प्रामाणिक ग्रन्थ मानते थे। उनकी दृष्टि में वेदों से कहीं अधिक इसका सम्मान था। भक्ति और शृंगार के मधुर सम्मिश्रण एवं कर्णप्रिय संगीत के ाथ-साथ कोमलाकान्त पदावली के कारण रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे श्रेष्ठ कवियों पर भी जयदेव का प्रभाव परिलक्षित होता है।

राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक संघर्ष के युग में जयदेव ने अपने काव्य-प्रणयन द्वारा धर्म केन्द्रित मानसिकता को जीवित रखने का सफल प्रयास किया। बौद्धों की वज्रयानी साधना से जन्मे वामाचार द्वारा कामान्ध बनाये हुए मध्यकालीन समाज में देवार्चन को धर्म व काम के समन्वय में प्रयुक्त करना एवं उसके द्वारा पतनोन्मुख उच्छृंखल सामाजिकता को धर्माभिमुखी बनाना ही गीतगोविन्द का प्रधान उद्देश्य है, जिसकी प्राप्ति कवि ने सहज ही कर ली है। 'गौतम' (कपिलवस्तु के शाक्य राजा शुद्धोधन के पुत्र, ६०० ई० पूर्व) 'बुद्ध' के लगभग डेढ़ हज़ार वर्ष बाद जब उन्हें हिन्दू धर्म में विष्णु का अवतार स्वीकार करने का निर्णय हो गया, तब जयदेव ने उस समय तक के शास्त्रसम्मत अवतारों की कथाओं को एकसूत्र में पिरोकर इस काव्य के प्राथमिक पदों में अवतारवाद के सिद्धान्तों पर मुहर लगाने का प्रयास किया- यह कवि का तत्कालीन समाज के भिन्न-भिन्न धर्मों एवं मतों के मध्य समन्वय का एक मात्र और अनूठा प्रयास था। जयदेव के सामाजिक दर्शन बदलने के क्रान्तिकारी कदम के प्रभाव से कालान्तर में स्वयं जयदेव को नवीन-मार्ग द्रष्टा होने के नाते अवतारों की कोटि में रखने का प्रयास किया गया। महाराष्ट्र के कवि महीपति ने जयदेव को अवतार सिद्ध करने के लिए भक्त विजय ग्रन्थ का प्रणयन किया, किन्तु यवनाक्रान्त समाज में और धार्मिक पतन के युग में यह प्रयास सफलता का दर्शन न कर पाया और इस्लाम के उत्कर्ष की

लहरों में बहकर अज्ञात कोनों में छिप गया, अन्यथा जयदेव को ईश्वर के ग्यारहवें अवतार स्वीकार किये जाने में कोई सन्देह न था। बाद में जयदेव के वंशजों ने इसी प्रयास को आगे बढ़ाया अवश्य, पर वह भी प्रभावशाली न हो सका। यह प्रयास जयदेव के काव्य की युगानुकूलता एवं कालजयी वृत्ति का प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है।

महाकवि जयदेव एवं उनके उत्कृष्टगीतिकाव्य गीतगोविन्द की महत्ता सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक है। जयदेव का काव्य जिस प्रकार तत्कालीन समाज के लिए आदर्श था, ठीक उसी प्रकार आज के समाज के लिए भी उपयुक्त है। यह काव्य एक ऐसे मनमोहक वातावरण की सृष्टि करता है जिसमें खोकर मानव परमानन्द की प्राप्ति करता है। आज के भौतिक युग में क्षीणकाय एवं अल्पायु मनुष्य अपने दैन्यकर्मों में इतना व्यस्त है कि ऋषि-मुनियों जैसी दीर्घ साधना व तपस्या द्वारा जन्म-जन्मान्तरों में भी ईश्वर की प्राप्ति नहीं कर सकता।

अतः किसी ऐसे सहज साधन की अतीव आवश्यकता है जिससे मनोरंजन के साथ-साथ अनजाने में ही भगवान से उत्कट प्रीति हो जाये और वर्तमान युग में यह सहज साधन है- सर्वलोकप्रिय जयदेव का गीतगोविन्द। चतुर कवि जयदेव साधारण नायक के रूप में भगवान कृष्ण की केलियों की चर्चा करने के साथ ही अपने भक्त हृदय के उद्‌गार इस प्रकार व्यक्त करते हैं, कि पाठक भी भक्ति रस में सराबोर हो जाता है तथा ईश्वर कृष्ण में तन, मन से अनुरक्त हो जाता है और यही कारण है कि जन-मन को प्रभावित करने वाला गीतगोविन्द एक देश विशेष की सम्पत्ति नहीं रह गया है। भारत से अन्यत्र भी यह इतना ही लोकप्रिय एवं महत्वपूर्ण है। धन्य वह कवि है और उसका अद्वितीय काव्य जिससे शिक्षित अथवा अशिक्षित भारत के अथवा विदेश के सभी मनुष्य समान आनन्द-लाभ करते हैं।

भिन्न-भिन्न कलाओं के मर्मज्ञ अपनी-अपनी कला सम्बन्धी तुष्टि के लिए गीतगोविन्द का अध्ययन करते हैं एवं पूर्ण तृप्ति का अनुभव करते हैं। आज के वैज्ञानिक युग में संगीतप्रिय मानव का गीतगोविन्द से घनिष्ठ परिचय है।

गायन-कला व नृत्य कला में गीतगोविन्द का विशिष्ट योगदान है। आज भी देव मंदिरों में होने वाले नृत्यों व कृष्ण कथा पर आधारित रासलीला में गीतगोविन्द के पदों का गायन होता है। रासलीला में तो इन पदों का अपना विशिष्ट स्थान है। प्रत्यूष बेला में अधिकांशतः रेडियों पर गीतगोविन्द के दशावतार स्तोत्र का सस्वर गायन होता है। दक्षिण के मन्दिरों में गीतगोविन्द के श्लोक गाये जाते हैं। गीतगोविन्द की अष्टपदियों का नृत्य के क्षेत्र में बहुत महत्व है। बहुधा दूरदर्शन पर प्रदर्शित होने वाले कार्यक्रमों में नृत्यनाटिका का आयोजन होता है जो गीतगोविन्द के कथांशों पर आधारित होता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विविध विशेषताओं से मण्डित गीतिकाव्य गीतगोविन्द एवं पदावली ने अद्यावधि गीतिकार जयदेव एवं विद्यापति की कीर्ति को चतुर्दिक प्रशस्त किया है तथा भविष्य में भी इनके उज्जवल यश को स्वतः प्रकीर्ण करता रहेगा।